वैश्विक वित्तीय संकट से मौद्रिक नीति के सबक: उभरते बाजार का परिदृश्य

दीपक मोहंती *

वैश्विक आर्थिक संकट से मौद्रिक नीति की भूमिका संबंधी पारंपरिक दृष्टिकोण को चुनौती मिली है। इस संकट के बाद तमाम तर्कों-वितर्कों का झुकाव इस आम सहमति की तरफ हुआ है कि केंद्रीय बैंक अथवा मौद्रिक नीति का उद्देश्य वित्तीय स्थिरता है। तथापि, सबसे प्रमुख चुनौती कार्यान्वयन के लिए एक कारगर ढांचा विकसित करना है। हालांकि, मौद्रिक नीति को लागू करने की दिशा में ब्याज दर का इस्तेमाल एक प्रभावशाली साधन के रूप में जारी रह सकता है, सामान्य स्थितियों में भी इसमें अन्य मात्रात्मक अथवा समष्टि विवेकपूर्ण साधनों के पूरक के रूप में इस्तेमाल से विभिन्न उद्देश्य प्राप्त करने के लिए न केवल मौद्रिक नीति के लचीलेपन में वृद्धि होगी बल्कि उसके नीचे की तरफ शून्य की सीमा-रेखा पर पहुंचने के जोखिम से भी बचा जा सकता है।

I. भूमिका

मैं बैंक ऑफ इजराइल को धन्यवाद देना चाहूँगा कि उसने इस प्रतिष्ठित जनसमूह के समक्ष मुझे अपने विचार प्रस्तुत करने का अवसर दिया। विश्व अर्थव्यवस्था के इतिहास में पिछले तीन वर्ष का समय अप्रत्याशित रहा है। यद्यपि यह संकट अपनी प्रकृति के हिसाब से कोई बहुत अभूतपूर्व संकट नहीं था लेकिन उसके प्रभाव को देखा जाय तो निश्चित रूप से वह वैश्विक और तीव्र रहा है। इसके फैलाव में दुनिया भर के नीति-निर्माताओं के पास उपलब्ध पारंपरिक तथा गैर-पारंपरिक नीतियों के विकल्पों की सभी-सीमाओं की परीक्षा हो गयी। दरअसल, जिस गति और तीव्रता के साथ अमेरिकी सब-प्राइम संकट ने पहले वैश्विक वित्तीय संकट और उसके बाद वैश्विक आर्थिक संकट का रूप धारण किया उससे समष्टि अर्थशास्त्र के मुख्य सैद्धांतिक आधारों पर ही नये सिरे चर्चा छिड़ गयी है।

इस संकट ने निश्चित रूप से राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मौजूद संस्थागत ढांचे तथा उपलब्ध नीतिगत साधनों की प्रभावशीलता पर ही सवाल खड़ा कर दिया है जिनका काम वित्तीय स्थिरता कायम रखना है। इसने वित्तीय बाजारों तथा संस्थाओं के कामकाज विशेष रूप से जोखिम का मूल्य निर्धारण, आबंटन तथा कुशलतापूर्वक प्रबंधन करने की क्षमता के संबंध में संदेह पैदा कर दिया है।

इसने निजी क्षेत्र के जोखिम प्रबंधन की कमजोरियों और सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा वित्तीय प्रणाली की निगरानी में कमियों को उजागर कर दिया है। हालांकि इस संकट से पाठ अभी निकल रहे है फिर भी वे न केवल विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए प्रासंगिक हैं बल्कि उनका महत्त्व उभरती बाजार आधारित अर्थव्यवस्थाओं के लिए भी है। इस पृष्ठभूमि में मैं निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार करूँगा। अपने कारण और प्रभाव के मामले में हाल का संकट अतीत के संकटों से किस मायने में भिन्न है? विकसित अर्थव्यवस्थाओं तथा उभरती बाजार आधारित अर्थव्यवस्थाओं की तरफ से इस संकट के जवाब में अपनायी गई नीतिगत पहल की प्रकृति में क्या अंतर थे? इसका भारत पर क्या प्रभाव पड़ा और भारत की नीतिगत अनुक्रिया क्या थी? मैं अपनी बात इस संकट से लिए जाने वाले छः मुख्य सबकों का विशेष रूप से उल्लेख करना चाहूँगा जिनका मौद्रिक नीति के संचालन पर प्रभाव पड़ा।

II. संकट की उत्पत्ति

अब यह साफ हो गया है कि यह संकट किसी एक कारण की देन नहीं बल्कि तमाम तरह के समष्टि-आर्थिक तथा व्यष्टि-आर्थिक कारकों के बीच उनके आपसी और जटिल अंतर्क्रिया का परिणाम था। समष्टि-आर्थिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो इस आर्थिक संकट का कारण लगातार वैश्विक असंतुलन, प्रमुख उन्नत अर्थव्यवस्थाओं द्वारा अपनायी जाने वाली अत्यधिक समायोजक मौद्रिक नीति तथा नीति-निर्माण में आस्तियों के मूल्य-निर्धारण का अभाव था। इस संकट पर केंद्रित आर्थिक साहित्य में जिन व्यष्टि-आर्थिक कारणों का प्रमुखता से उल्लेख किया गया है वे हैं - अत्यधिक ऋण वृद्धि तथा संबद्ध फायदे, ऋण मानकों का स्तर नीचे गिराना, पर्याप्त विनियमन के बिना तीव्र वित्तीय नवोन्मेष, अपर्याप्त कारपोरेट गवर्नेंस, वित्तीय क्षेत्र में अनुपयुक्त आर्थिक प्रोत्साहन ढांचा तथा वित्तीय प्रणाली की व्यापक स्तर पर ढीली-ढाली निगरानी।

वैश्विक असंतुलन

यह तर्क दिया जाता है कि सब-प्राइम समस्या ने पलीते में आग लगाई थी लेकिन इस संकट का मूल कारण वैश्विक स्तर पर चल रहा लगातार असंतुलन था (बीआईएस, 2009)। विकसित देशों विशेष रूप से अमेरिका के बड़े पैमाने पर चालू खाता घाटा, जो उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं विशेष रूप से चीन में बड़े पैमाने पर चालू

* 1 अप्रैल 2011 को बैंक ऑफ इजराइल, जेरूसलम के केंद्रीय बैंक सम्मेलन के अवसर पर भारतीय रिज़र्व बैंक के कार्यपालक निदेशक श्री दीपक मोहंती द्वारा प्रस्तुत पेपर। जया मोहंती, राजीव जैन और विनोद बी. भोई द्वारा की गई सहायता के लिए आभार प्रकट किया जाता है।

चार्ट 1: वैश्विक असंतुलन

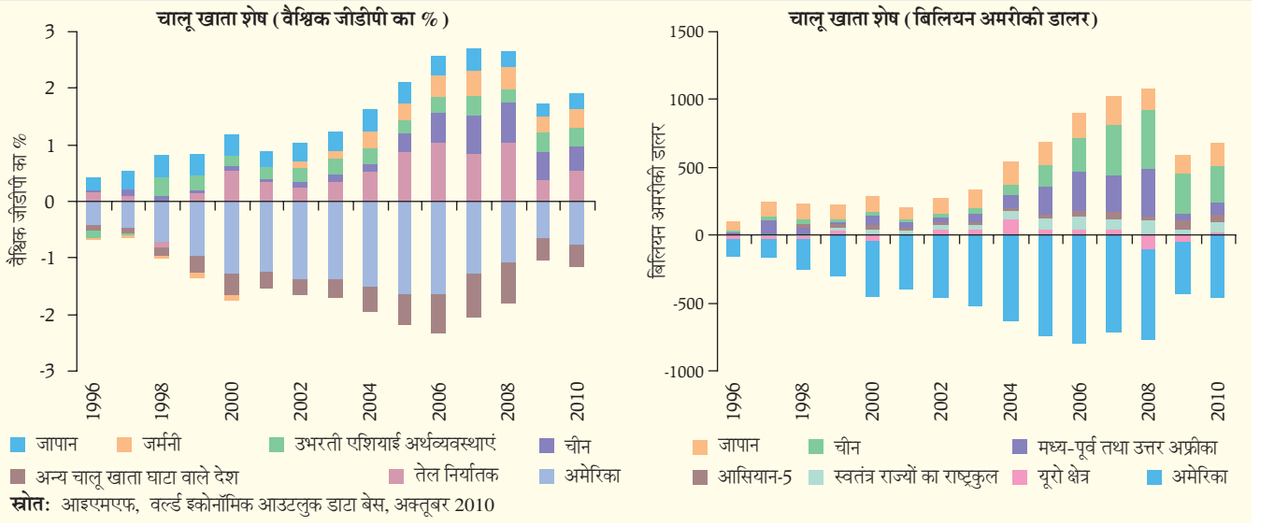

स्रोत: आइएमएफ, वर्ल्ड इकोनॉमिक आउटलुक डाटा बेस, अक्तूबर 2010

खाता अधिशेष के रूप में प्रतिबिंबित हुआ, से यह अर्थ निकलता है कि अतिरिक्त बचत की गति विकासशील देशों से विकसित देशों की तरफ हुई (चार्ट 1)। 'बचत का यह भंडार' (बर्नकि, 2005) संकट का एक कारण माना जाता है। तथापि, कारण बहुत स्पष्ट नहीं हो पाया है कि संकट का कारण क्या था: चीन में अत्यधिक बचत अथवा अमेरिका में अत्यधिक उपभोग (मोहंती, 2010)।

साथ ही यह तर्क भी दिया जाता है कि उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं जिसमें चीन सबसे आगे था, द्वारा पूंजी प्रवाह की दिशा अचानक उलटने की स्थिति में, स्व-बीमा के रूप में भारी मात्रा में आरक्षित निधियों के संचय के कारण विनिमय दरें बेमेल हो गयीं। इससे वैश्विक असंतुलन स्वयं को सुव्यवस्थित ढंग से समायोजित नहीं कर सके - जिसका बोझ विषमानुपाती रूप से उन देशों पर पड़ा जिनकी विनिमय दरें लचीली थीं। हालांकि इस तर्क में दम है फिर भी यह स्पष्ट नहीं है कि क्या केवल विनिमय दरों में उतार-चढ़ाव के कारण वैश्विक असंतुलनों को रोका जा सकता था और सकल मांग में किसी प्रकार के समायोजन की जरूरत नहीं पड़ती - अमेरिका में कम उपभोग तथा चीन में अधिक उपभोग।

मौद्रिक नीति

कई विकसित देशों में एक लंबे समय तक नीतिगत दरें बहुत कम बनी रहीं (अर्थात जिसे तटस्थ दरें कहा जाता है उनसे भी कम) जिसका नतीजा था कि जोखिमों का गलत मूल्य-निर्धारण हुआ और इस प्रकार संकट पैदा हुआ (चार्ट 2)।

चार्ट 2: प्रमुख नीतिगत दरें - चयनित विकसित अर्थव्यवस्थाएं

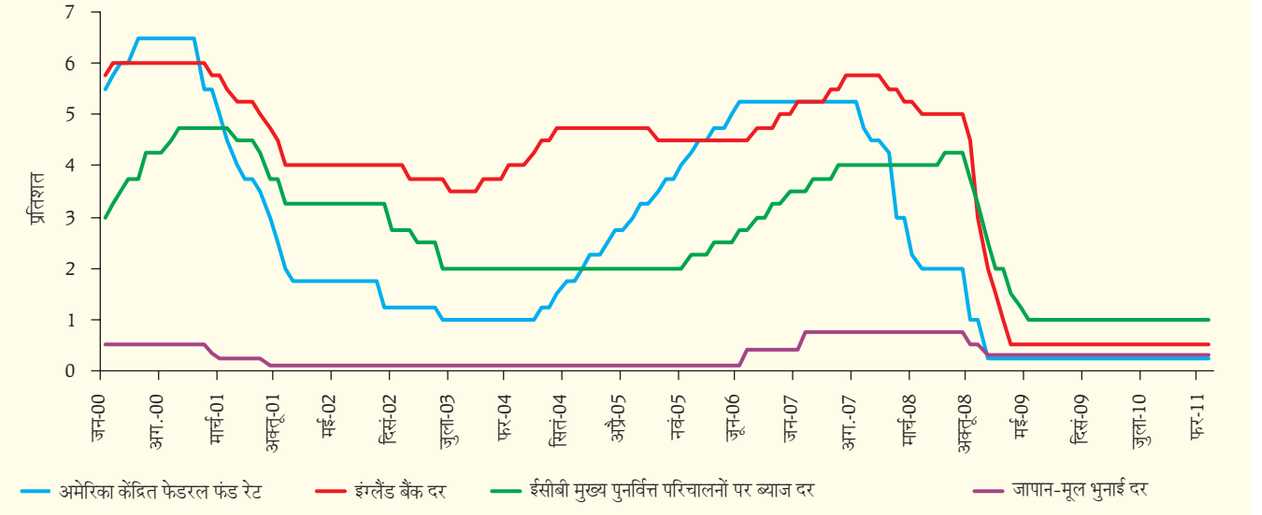

दोनों पक्षों के तर्कों के बावजूद संकट ने प्रदर्शित कर दिया है कि विकसित देशों की मौद्रिक नीतियों का प्रभाव उभरती बाजार अर्थव्यवस्था पर पड़ा है। उदाहरण के लिए, ब्याज दर अंतर में वृद्धि करते हुए विकसित अर्थव्यवस्थाओं की लगातार निम्न ब्याज दरें अधिक प्रतिफल की चाह में अत्यधिक पूंजी प्रवाह को उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं की तरफ मोड़ सकती हैं। इस प्रकार इन अर्थव्यवस्थाओं के समक्ष मंदी का ऐसा जोखिम पैदा हो सकता है जो उनकी अर्थव्यवस्था के बुनियादी तत्वों से जुड़ा तक न हो। पूंजी के अत्यधिक अंतर्प्रवाह के कारण आस्तियों के मूल्य बढ़ सकते हैं और विनिमय दर में वृद्धि हो सकती है। इस तथ्य के बाद कि अधिकतर उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाएं पहले की तुलना में आज विकसित अर्थव्यवस्थाओं के साथ अधिक जुड़ गई हैं, वे कहीं से भी उत्पन्न होने वाले संकट के प्रभाव से अछूती नहीं रही सकतीं।

अत्यधिक लाभ

वैश्विक असंतुलनों को कायम रखने के अलावा एक तर्क यह भी दिया जाता है कि विकसित अर्थव्यवस्थाओं में अपनायी जाने वाली नरम मौद्रिक नीति ने निवेशकों तथा बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं के हिस्से में फायदे को काफी बढ़ा दिया है। इस सदी के पहले दशक में वित्तीय संस्थाओं के लाभ में हुयी वृद्धि विशेष रूप से चौंकाने वाली रही है (चार्ट 3)।

प्रतिफल की खोज

बाजार में अत्यधिक चलनिधि के साथ निम्न ब्याज दरों के कारण प्रतिफल की होड़ शुरू हो गयी जिसने बाद में संश्लिष्ट डेरेवेटिवों तथा संरचित वित्त उत्पादों के रूप में तेज गति से वित्तीय नवोन्मेषों को बढ़ावा दिया। नतीजतन, वित्तीय प्रणाली तुलन पत्रेतर कार्य-कलापों में वृद्धि के कारण आकार में बड़ी हो गयी और इस प्रकार वह छद्म बैंकिंग विनियमन की परिधि से बाहर बनी रही।

लाभ के स्वर्णिम वर्षों के दौरान वित्तीय अर्थशास्त्रियों का यह विश्वास बना रहा कि मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था कभी गड़बड़ नहीं होगी लेकिन आर्थिक संकट ने उनके विश्वास को झुठला दिया (क्रुगमैन, 2009)। तथापि, वित्तीय प्रणाली को एक तरफ नरम मौद्रिक नीति के अंतर्गत मंदी के जोखिम का तथा दूसरी तरफ वैश्विक असंतुलनों के अव्यवस्थित फैलाव का खतरा ज्यों का त्यों बना रहा। यह तर्क दिया जाता है कि 'बृहत सामान्यीकरण' में ही उसके विखंडन के बीज छिपे थे। इस प्रकार के स्थायित्व ने आत्मसंतुष्टि, अत्यधिक जोखिम उठाने की प्रवृत्ति तथा अंततः अस्थिरता को पैदा किया (मिंस्की, 2008)। इसके अलावा, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी बहु-स्तरीय संस्थाएं, जिन्हें निगरानी रखने की जिम्मेदारी दी गई थी, वैश्विक तथा प्रणालीगत रूप से विकसित अर्थव्यवस्थाओं के स्तरों पर जोखिम केंद्रों का पता लगाने में विफल रहीं (रेड्डी, 2009)।

III. प्रभाव तथा नीतिगत स्तर पर अनुक्रिया

उन्नत अर्थव्यवस्थाएं

सबसे पहले यह संकट विकसित अर्थव्यवस्थाओं के अंतर-बैंक बाजारों में चलनिधि की कमी के रूप में दिखायी पड़ा था क्योंकि उस समय बैंक प्रतिपक्षकार जोखिम के भय से एक-दूसरे को उधार देने से कतराने लगे थे। इस स्थिति के कारण स्प्रेड असामान्य स्तर पर पहुंच गया, परिपक्वता अवधियां कम होने लगीं और बाजार के कुछ क्षेत्र सिकुड़ने लगे। इसके परिणामस्वरूप, नतीजा यह हुआ कि बैंकों एवं

चार्ट 3 : चयनित विकसित अर्थव्यवस्थाओं में ऋण-जीडीपी अनुपात (जीडीपी भारित, 1987 =100)

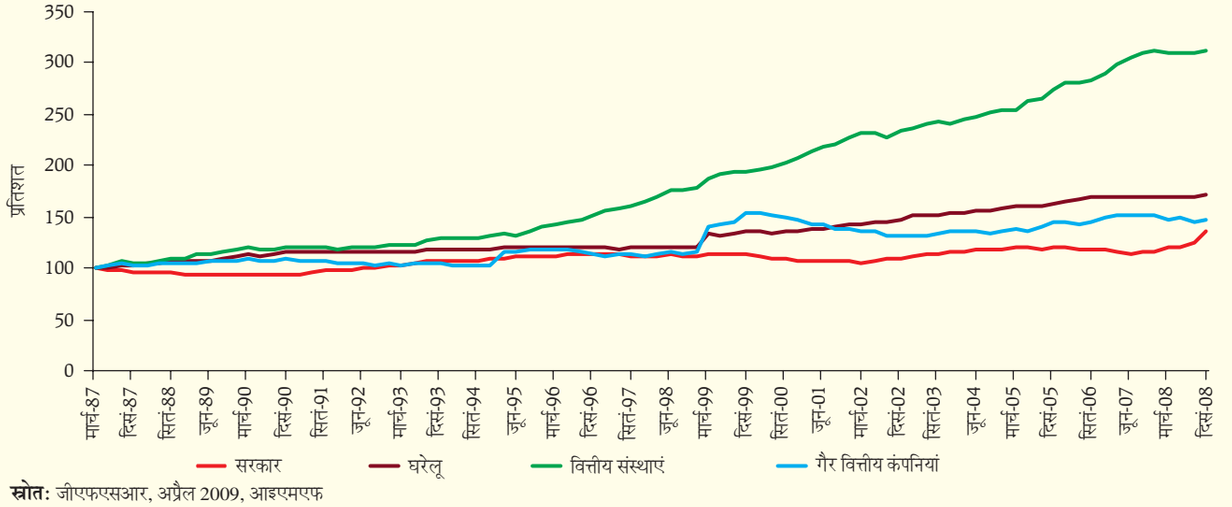

स्रोत: जीएफएसआर, अप्रैल 2009, आइएमएफ

अन्य वित्तीय संस्थाओं को निधीयन तथा पूंजी तक अपनी पहुंच में कमी महसूस हुयी। ऋण की सख्त स्थितियों तथा बैंकों और वित्तीय संस्थानों द्वारा जोखिम से बचने की चरम प्रवृत्ति एवं डिलेवरजिंग का मिला जुला प्रभाव था कि निजी क्षेत्र के विकास में तेजी से गिरावट आई।

तीव्र अनिश्चितता के माहौल में शेयरों की कीमतें भी लुढ़क गयीं। शेयरों की गिरती हुई कीमतों के साथ बिगड़ती हुई समष्टि-आर्थिक स्थितियों के कारण बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं की लाभप्रदता प्रभावित हुई। परिणामस्वरूप, चलनिधि की समस्या ऋणशोधन क्षमता की समस्या तब्दील हो गई जिसके कारण अमेरिका तथा यूरोप की अन्य विकसित अर्थव्यवस्थाओं में बड़े पैमाने पर बैंक संकट पैदा हो गया। आस्तियों की कीमतों में गिरावट के कारण होने वाली संपदा हानि ने संपदा क्षेत्र की समस्याओं को विकराल बना दिया। विकसित अर्थव्यवस्थाओं में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में वास्तविक वृद्धि वर्ष 2007 के 2.7 प्रतिशत से घटकर वर्ष 2008 में 0.2 प्रतिशत हो गई और उसके बाद वर्ष 2009 में वह ऋणात्मक (-3.4 प्रतिशत) हो गई।

आर्थिक संकट का उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में फैलाव:

प्रारंभ में, व्यापक रूप से यह माना जा रहा था कि उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाएं काफी मात्रा में विदेशी मुद्रा रिज़र्व के बफर, बेहतर नीतिगत ढांचों तथा आम तौर पर बैंकिंग क्षेत्र तथा कंपनियों के मजबूत तुलनपत्रों के आधार पर वैश्विक वित्तीय मंदी से अछूती रहेंगी। तथापि, जैसे ही सितंबर 2008 में लेहमैन ब्रदर्स की बर्बादी की कहानी सामने आई और उससे संकट और गहराया जिसका नतीजा यह हुआ कि जोखिम से बचने की प्रवृत्ति तीव्र हुई तथा वैश्विक स्तर पर डिलीवरेजिंग भी तेज हो गई और इस प्रकार उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाएं प्रभावित हुईं।

नीति के स्तर पर अनुक्रिया

चलनिधि आघातों का अंतरराष्ट्रीय फैलाव तीव्र और अप्रत्याशित था। एक तरफ जहां आस्ति की कीमतों में गिरावट तथा बाजार में खरीद-फरोख्त किए गए लिखतों के मूल्यन में अनिश्चितता ने बाजार में चलनिधि को प्रभावित किया वहीं दूसरी तरफ विश्व की प्रमुख वित्तीय संस्थाओं की नाकामी तथा डिलीवरेजिंग प्रक्रिया के कारण बाजार की परिस्थितियां चलनिधि की प्रतिपूर्ति करने के हिसाब से कठिन हो गईं। चलनिधि के अभाव के बढ़ते हुए जोखिम, जो क्रमिक रूप से ऋण शोधन क्षमता की समस्याओं में तब्दील हो सकते हैं, के मद्देनजर इस संकट से निपटने के लिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों स्तरों पर अप्रत्याशित नीतिगत कदम उठाए गए। विकसित अर्थव्यवस्थाओं के मौद्रिक प्राधिकारियों ने सबसे पहले नीतिगत दरों को कम करके और उसके बाद उनके तुलन पत्रों का प्रयोग गैर-परंपरागत रूप से करके चलनिधि की सहूलियत पैदा करने के लिए जोरदार ढंग से मौद्रिक स्तर पर प्रयास किया ताकि चलनिधि में वृद्धि की जा सके। वित्तीय संकट के संपदा क्षेत्र में फैलने और आर्थिक मंदी की बढ़ती हुई चिंताओं के कारण ज्यादातर केंद्रीय बैंकों की नीति में ऋण तथा मुद्रा छापकर चलनिधि बढ़ाने को तरजीह दी जाने लगी।

विकसित देशों के केंद्रीय बैंकों ने प्रतिभूतियों के संग्रह तथा केंद्रीय बैंकिंग परिचालनों के लिए पात्र प्रतिपक्षकारों की संख्या के साथ ही चलनिधि प्रदान करने वाले परिचालनों की परिपक्वता अवधि को भी बढ़ा दिया। गैर-परंपरागत ढंग के इन प्रयासों को अमल में लाने के फलस्वरूप उनके तुलनपत्रों के आकार एवं स्वरूप में तीव्र रूप से विस्तार हुआ (चार्ट 4)।

चार्ट 4: केंद्रीय बैंकों के तुलन पत्र

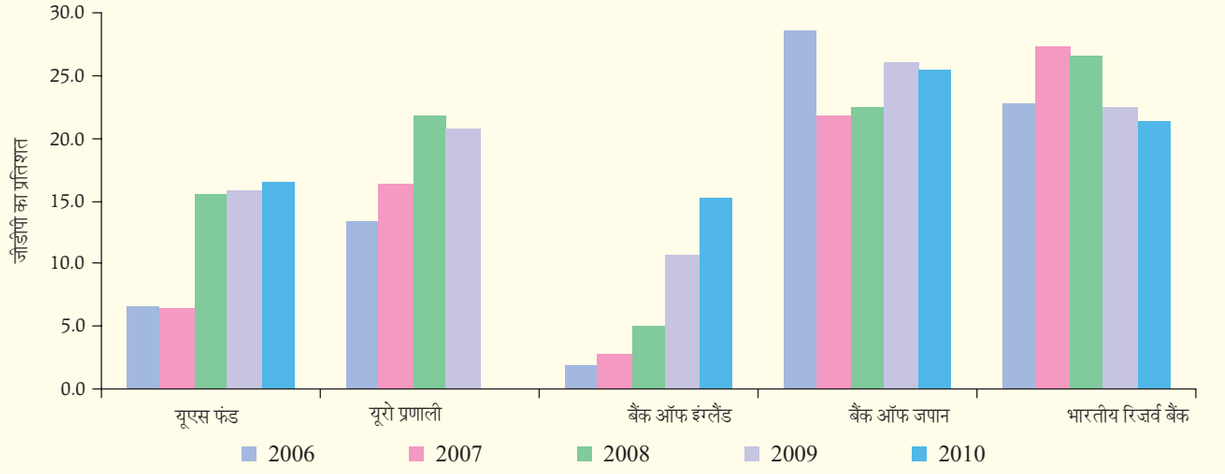

स्रोत: संबंधित केंद्रीय बैंकों की वेबसाइटें।

चार्ट 5: सरकारी बकाया और सार्वजनिक ऋण

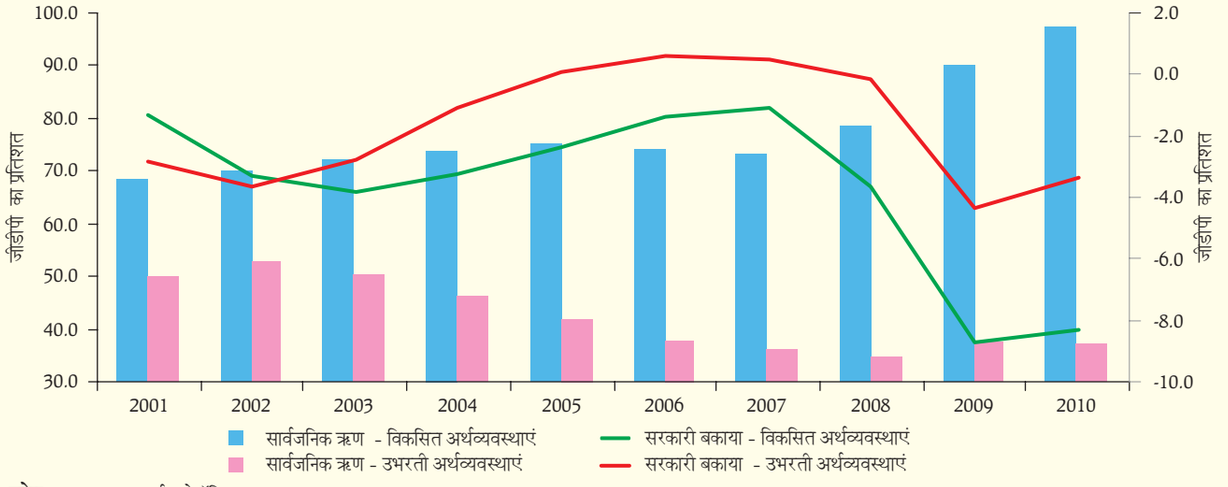

स्रोत: आइएमएफ वर्ल्ड इकोनॉमिक आउटलुक, अक्तूबर 2010।

वित्तीय संकट के साथ-साथ बड़े पैमाने पर आर्थिक मंदी के फलस्वरूप अप्रत्याशित परिमाण वाली प्रति-चक्रीय राजकोषीय नीति का दौर शुरू हो गया। जैसा कि अमेरिका तथा अन्य विकसित अर्थव्यवस्थाओं में बड़े पैमाने पर बेलआउटों से जाहिर होता है, राजकोषीय उपायों को वित्तीय तथा कार्पोरेट क्षेत्रों के तुलनपत्र सुधारने पर केंद्रित किया गया। इस प्रकार के वित्तीय प्रोत्साहन उपायों के कारण विकसित अर्थव्यवस्थाओं की राजकोषीय स्थिति में काफी गिरावट देखी गई जो जीडीपी अनुपात की तुलना में काफी सार्वजनिक कर्ज में प्रतिबिंबित होती है (चार्ट 5)।

वैश्विक वित्तीय संकट के संक्रमण ने उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के लिए यह आवश्यक बना दिया कि वे मौद्रिक एवं राजकोषीय नीति के स्तर पर तेजी से अनुक्रिया करें ताकि वे बाजारों का सुव्यवस्थित संचालन सुनिश्चित कर सकें, वित्तीय स्थिरता कायम रख सकें और विकास पर उसके प्रतिकूल प्रभाव को कम कर सकें। उन्होंने पहले चलनिधि वृद्धि करने के उपायों का सहारा लिया - विदेशी मुद्रा चलनिधि के बाद घरेलू चलनिधि - उसके बाद बहुत ऊँचे स्तर से नीतिगत दर कटौती लागू करने से पहले मुद्रा विनिमय तथा आरक्षित नकदी निधि अनुपात जैसे उपायों का प्रयोग किया। इस क्रम में, नीतिगत स्तर पर उनकी अनुक्रिया का वैश्विक स्तर पर किए जा रहे प्रयासों से काफी तालमेल बैठ गया।

अधिकतर उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के केंद्रीय बैंकों ने विदेशी मुद्रा भंडारों की एकमुश्त बिक्री की ताकि विदेशी मुद्रा देने की स्थानीय बाजार की मांग पूरी कर सकें तथा विनिमय दर पर दबाव कम किया जा सके। ब्राजील, कोरिया, मैक्सिको तथा सिंगापुर जैसे देशों के केंद्रीय बैंकों ने फेडरल रिज़र्व के साथ मिलकर डॉलर स्वैप की व्यवस्थाएं की थीं। यद्यपि उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं ने चलनिधि सुविधा बढ़ाने तथा विदेशी मुद्रा के अनेक उपाय किए तथापि ऋण की उपलब्धता तथा मुद्रा की व्यवस्था करके चलनिधि उपलब्ध कराने के प्रयास अपेक्षाकृत अधिक सीमित थे (सारणी 1)।

हालांकि उन्नत अर्थव्यवस्थाओं तथा उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं दोनों ने परंपरागत एवं गैर-परंपरागत उपायों का इस्तेमाल किया फिर भी उनके समय, प्रकार और मात्रा के हिसाब से उनमें भिन्नताएं थीं। पहला, एक तरफ जहां विकसित अर्थव्यवस्थाओं में नीतिगत दरों के शून्य की ओर अग्रसर होने के कारण मौद्रिक उपायों में परिवर्तन परंपरागत से गैर-परंपरागत नजरिये से किये गये जबकि कई उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में परंपरागत रूप से नीतिगत दरों में कमी करने से पहले गैर-परांपरागत रूप से विदेशी मुद्रा की उपलब्धता तथा घरेलू स्तर पर चलनिधि में बढ़ोतरी के उपाय किये गये। दूसरा, जहां उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के केंद्रीय बैंक घरेलू स्तर पर चलनिधि को सहज रूप से उपलब्ध कराने के लिए अरक्षित निधि अपेक्षाओं के बतौर ज्यादातर प्रत्यक्ष उपायों पर निर्भर थे वहीं विकसित देशों के केंद्रीय बैंकों ने प्रतिपक्षकारों, संपार्श्विक तथा परिपक्वता अवधि में छूट के रूप में चलनिधि प्रदान करने वाले तमाम उपाय किये। तीसरा, उन्नत देशों के केंद्रीय बैंकों ने ऋण तथा चलनिधि उपलब्ध कराने के उपायों का व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जिसके परिणामस्वरूप उनके तुलनपत्र का आकार बढ़ गया। चौथा, जहां विकसित अर्थव्यवस्थाओं में राजकोषीय सहायता का लक्ष्य वित्तीय क्षेत्र को इस संकट से उबारना था वहीं उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में आम तौर पर इसका अर्थ सकल मांग में कमी की समस्या का निदान करना था।

भारतीय अनुभव

वैश्विक संकट के उभरने तक भारतीय अर्थव्यवस्था उच्च विकास के दौर से गुजर रही थी जिसके पीछे घरेलू मांग की ताकत थी। यह एक ऐसा बढ़ता हुआ घरेलू निवेश था जो मुख्यतः घरेलू बचत तथा उपभोग की लगातार मांग द्वारा वित्तपोषित था। मुद्रास्फीति भी कम और स्थिर थी। इसी क्रम में वित्तीय क्षेत्र के सुधारों, नियमों पर आधारित

सारणी 1 : उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के केंद्रीय बैंको द्वारा अपनाए गए चयनित गैर-परंपरागत उपाय

	प्रकार	देश	उपाय
	1	2	3
I.	**घरेलू चलनिधि उपलब्धता**		
	1. प्रत्यक्ष मुद्रा बाजार लिखित	चीन, हंगरी, नाइजीरिया	आरक्षित नकदी निधि अनुपात अपेक्षाओ में कमी
	2. प्रणालीगत घरेलू चलनिधि की व्यवस्थाएं	फिलिपींस	विदेशी मुद्रा में सरकारी कर्ज प्रतिभूतियों को शामिल करने के लिए स्थायी रिपो सुविधा के लिए पात्र संपार्श्विक में विस्तार
		इजराइल	विभिन्न प्रकार तथा परिपक्वता अवधियों वाले सरकारी कर्ज के संबंध में खुलेबाजार परिचालन करने के लिए केंद्रीय बैंक की घोषणा
		चिली	वाणिज्यिक पत्रों को शामिल करने के लिए मौद्रिक परिचालनों के लिए पात्र संपार्श्विकों की सूची को विस्तृत करना
II.	**विदेशी मुद्रा उपलब्धता**		
	1. विदेशी मुद्रा चलनिधि की उपलब्धता	ब्राजील	1-महीने वाली डॉलर चलनिधि लाइन्स बेचने के लिए केंद्रीय बैंक की घोषणा
		फिलिपींस	डॉलर रिपो सुविधा खोलने के लिए केंद्रीय बैंक का अनुमोदन
		तुर्की	दैनिक डॉलर बिक्री नीलामियों की शुरूआत
		इंडोनेशिया	वाणिज्यिक बैंकों के लिए आरक्षित विदेशी मुद्रा संबंधी अपेक्षाओं में कमी
		सर्बिया	विदेशी आस्तियों के लिए अपेक्षित आरक्षित निधियों में कमी
	2. विभिन्न केंद्रीय बैंकों की मुद्रा स्वैप व्यवस्थाएं	ब्राजील मैक्सिको कोरिया सिंगापुर	फेडरल रिजर्व, बैंको सेंट्रल डू ब्राजील, बैंकों डी मोक्सिको, बैंक ऑफ कोरिया तथा मॉनिटरी अथॉरिटी ऑफ सिंगापुर के साथ अस्थायी आपसी स्वैप
III.	**ऋण और मात्रात्मक उपलब्धता**	कोरिया	वाणिज्यिक पत्रों को खरीदने के लिए बांड फंड का केंद्रीय बैंक द्वारा वित्त पोषण (एक सीमा तक) की घोषणा
		इजराइल	सरकारी बांड खरीदने के लिए केंद्रीय बैंक की घोषणा

स्रोत: मुद्रा और वित्त संबंधी रिपोर्ट 2008-09, भारतीय रिजर्व बैंक [(जिसे इशी और अन्य (2009)] के आधार पर तैयार किया गया है।

राजकोषीय नीति तथा भविष्योन्मुखी मौद्रिक नीति की मिलीजुली भूमिका के फलस्वरूप समष्टि-आर्थिक परिदृश्य में सुधार हुआ।

प्रारंभ में भारत विश्व स्तर पर चल रहे घटनाक्रम से अछूता रहा लेकिन अंततः उस पर सभी दिशाओं से प्रभाव मसलन, वित्तीय, स्थावर संपदा और उससे भी महत्त्वपूर्ण आत्मविश्वास के स्तर पर पड़ा (सुब्बाराव 2009)। इसकी एक वजह मौजूदा संकट के विश्वव्यापी होने की प्रकृति तथा दूसरी वजह 90 के दशक से भारत की अर्थव्यवस्था की तीव्र गति से विश्व के साथ आर्थिक एवं व्यापारिक ताल-मेल थी। इसके परिणामस्वरूप, भारतीय व्यापार के विश्व व्यापार के साथ तालमेल की मात्रा में परिवर्तन हुआ जो हाल के वर्षों में वित्तीय एकीकरण में वृद्धि के साथ यह प्रदर्शित करता है कि भारत विश्व स्तर पर होने वाली प्रवृत्तियों से अछूता नहीं रह सकता। अब, वैश्विक आर्थिक हलचलों का सीधा प्रभाव घरेलू अर्थव्यवस्था पर पड़ रहा है (मोहंती, 2009)।

इस संकट का पहला प्रभाव भारत के वित्तीय बाजारों पर दिखायी दिया। शेयर, मुद्रा, विदेशी मुद्रा तथा ऋण बाजारों पर चौतरफा दबाव पड़ा। इसी का नतीजा था कि बाहरी मांग के दबावों के प्रभाव में भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रगति में थोड़ी कमी आयी खास तौर से 2008-09 की दूसरी छः माही के दौरान जब भारतीय अर्थव्यवस्था में पिछले पांच वर्षों के दौरान की 8.9 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दमदार वृद्धि के मुकाबले पूरे वर्ष 6.8 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गयी (सारणी 2)।

आर्थिक संकट के प्रभाव को भारत के आर्थिक बाजार तथा व्यापक अर्थव्यवस्था पर सीमित करने के लिए अन्य केंद्रीय बैंकों की तरह रिज़र्व बैंक ने तमाम प्रकार के परंपरागत तथा गैर-परंपरागत कदम उठाए। इन उपायों में घरेलू तथा विदेशी मुद्रा की उपलब्धता बढ़ाने तथा नीतिगत दरों में तीव्र कटौती के उपाय शामिल रहे। भारतीय रिज़र्व बैंक ने प्रणाली में चलनिधि को बढ़ाने के लिए चलनिधि समायोजन सुविधा (एलएएफ), खुले बाजार परिचालन (ओएमओ), नकदी आरक्षित निधि अनुपात (सीआरआर) तथा बाजार स्थिरीकरण योजना (एमएसएस) जैसे अनेक उपायों का प्रयोग किया। अक्तूबर 2008 से अप्रैल 2009 के बीच सात महीने की अवधि के दौरान नीतिगत पहल

[1] बाजार स्थिरीकरण योजना की प्रतिभूतियां अल्पकालिक सरकारी पेपर होती हैं जो पूर्व में निष्प्रभावीकरण के प्रयोजन के लिए जारी की जाती हैं तथा ये भारतीय रिज़र्व बैंक के कब्जे में रहती हैं। संकट के दौरान इन प्रतिभूतियों की चुकौती और पुनर्खरीद के कारण रुपया चलनिधि में वृद्धि हुई।

के स्तर पर काफी सक्रियता रही। उदाहरणार्थ, (i) रिपो दर में 425 आधार अंकों की कमी करके उसे 4.75 प्रतिशत पर लाया गया (ii) रिवर्स रिपो दर में 275 आधार अंकों की कमी करके उसे 3.25 प्रतिशत पर लाया गया (iii) सीआरआर में संचित रूप से 400 आधार अंकों की कमी करके उसे 5.0 प्रतिशत पर लाया गया तथा (iv) सांविधिक चलनिधि अनुपात में बैंकों की निवल मांग और मीयादी देयताओं (एनडीटीएल) में 1 प्रतिशत अंक की कमी करके उसे 24 प्रतिशत पर लाया गया (v) अन्य चलनिधि प्रावधानों में सभी अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के लिए उनके एनडीटीएल के 1 प्रतिशत की सीमा तक पुनर्वित्त सुविधा, चलनिधि समायोजन सुविधा (एलएएफ) के अंतर्गत मीयादी रिपो शामिल हैं ताकि म्युच्युअल फंडों, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों (एनबीएफसी) तथा आवास वित्त कंपनियों के अलावा बाजार स्थिरीकरण योजना (एमएसएस) प्रतिभूतियों के बाह्य बैंक के लिए चलनिधि के दबावों को कम किया जा सके। इन उपायों के द्वारा वित्तीय प्रणाली को 5.6 ट्रिलियन से अधिक (अथवा जीडीपी के 10 प्रतिशत से अधिक) संचित राशि संभावित रूप से प्राथमिक चलनिधि के रूप में उपलब्ध कराई गई। कम समय में वित्तीय बाजारों में परिस्थितियों को व्यवस्थित रूप से तेजी से बहाल करने में इन उपायों की प्रभावी भूमिका रही। तथापि, अन्य विकसित अर्थव्यवस्थाओं की तरह भारतीय रिज़र्व बैंक के तुलन पत्र में कोई खासी बढ़ोतरी नहीं हुयी (चार्ट 4) क्योंकि ये सारे प्रयास मुख्य रूप से बैंकों के साथ प्रतिपक्षकार तथा सरकारी प्रतिभूतियों के साथ संपार्श्विक के रूप में किये गये थे।

चलनिधि प्रबंधन के इन परिचालनों को विदेशी मुद्रा दर प्रबंधन तथा निर्विघ्न आंतरिक ऋण प्रबंधन परिचालनों के साथ तालमेल बिठाते हुए रिज़र्व बैंक ने यह सुनिश्चित किया कि प्रणाली में पर्याप्त रूप से चलनिधि उपलब्ध हो जो कीमतों तथा वित्तीय स्थिरता के लक्ष्य के अनुरूप हो। वर्ष 2008-09 के दौरान इन उपायों को करों में कटौती, इंफ्रास्ट्रक्चर में निवेश तथा सरकारी खपत पर होने वाले व्यय में वृद्धि के रूप में राजकोषीय प्रोत्साहन पैकेजों की सहायता मिली। इससे केंद्र सरकार के राजकोषीय घाटे में जीडीपी के लगभग 3.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई जिससे वर्ष 2008-09 के दौरान राजकोषीय घाटा 6.0 प्रतिशत (सारणी 2) हो गया। तथापि, यह नोट करना महत्त्वपूर्ण होगा कि विकसित देशों की भांति संपूर्ण राजकोषीय प्रोत्साहन का लक्ष्य वित्तीय क्षेत्र को सहयोग देने की बजाय भारत में उसका लक्ष्य सकल मांग में हुई कमी पर केंद्रित रहा। सकल मांग को बल देने के लिए वर्ष 2009-10 के दौरान राजकोषीय घाटे में विस्तार का रुख बना रहा।

तदुपरांत, आर्थिक वृद्धि में आगे मजबूती आने तथा मुद्रास्फीति की एक प्रमुख चिंता के रूप में उभरने के बाद भारत ने अक्तूबर 2009 से अपनी समायोजी मौद्रिक नीति से बाहर निकलना शुरूकर दिया। प्रारंभ में, चलनिधि के सभी विशेष उपायों को वापस लिया गया और उसके बाद नीतिगत दरों में बढ़ोतरी की गयी - चलनिधि समायोजन सुविधा की रिपो एवं रिवर्स रिपो दरों में क्रमशः 200 आधार अंकों तथा 250 आधार अंकों की वृद्धि की गयी। नकदी चलनिधि अनुपात (सीआरआर) को भी 100 आधार अंक बढ़ाकर 6.0 प्रतिशत कर दिया गया है। वर्ष 2010-11 के दौरान राजकोषीय सुदृढ़ता की प्रक्रिया बहाल होने के बाद उसमें वर्ष 2011-12 के दौरान और वृद्धि होने की उम्मीद है। इस प्रकार, जहां संकट का विस्तार वैश्विक था, वहीं भारत में नीतिगत पहलें घरेलू विकास के

सारणी 2: भारत में चयनित समष्टि आर्थिक संकेतकों का व्यवहार

	2003-04 से 2007-08 (औसत)	2008-09	2009-10	2000-01 से 2009-10 (औसत)
वास्तविक जीडीपी वृद्धि	8.9	6.8	8.0	7.3
पण्य निर्यात वृद्धि	25.4	13.7	-3.6	17.7
पण्य आयात वृद्धि	32.7	20.8	-5.6	20.2
व्यापक मुद्रा वृद्धि	17.7	19.3	16.8	17.0
खाद्येतर ऋण वृद्धि	26.7	17.8	17.1	22.4
निवल पूंजी प्रवाह (जीडीपी का %)	4.6	0.6	3.9	3.4
केंद्र का राजकोषीय घाटा (जीडीपी का %)	3.6	6.0	6.4	4.8
घरेलू कर्ज (जीडीपी का %)	58.3	56.6	53.7	57.0
बीएसई सूचकांक (मार्च अंत)	15,644*	9,709	17,528	-
एक दिवसीय मांग दर	5.6	7.1	3.2	6.1
10 वर्षीय सरकारी प्रतिभूति प्रतिफल	7.0	7.5	7.2	7.5
अंतिम अवधि विनिमय दर (₹ / अमरीकी डॉलर)	43.1	50.9	45.1	45.4
36-मुद्रा आरईईआर (% परिवर्तन)	1.0	-13.6	13.3	0.4
थोक मूल्य सूचकांक मुद्रास्फीति दर (औसत)	5.3	8.4	3.8	5.3

* वर्ष 2007-08 से संबंधित।

परिदृश्य, महंगाई की परिस्थितियों तथा वित्तीय स्थिरता सरोकारों को ध्यान में रखकर की गयी थीं।

नीतिगत पहलों में मुख्य अंतर : भारत बनाम विकसित देश

तथापि, भारतीय रिज़र्व बैंक तथा तमाम विकसित देशों के केंद्रीय बैंकों द्वारा की गयी कार्रवाइयों में कुछ मुख्य अंतर इस प्रकार थे:

- प्रणाली में चलनिधि डालने की प्रक्रिया के दौरान प्रतिपक्षकार विकसित अर्थव्यवस्थाओं के मामले में गैर-बैंकों के विपरीत बैंक थे। यहां तक कि म्युचुअल फंडों, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों तथा आवास वित्त कंपनियों के लिए चलनिधि उपाय अधिकतर बैंकों के माध्यम से किये गये।
- चलनिधि उपलब्ध कराने के लिए संपार्श्विक मानकों में कोई समझौता नहीं किया गया। विकसित देशों में बंधक प्रतिभूतियों तथा वाणिज्यिक पत्रों (सीपी) के विपरीत भारत में संपार्श्विकों का दायरा सरकारी प्रतिभूतियों से आगे नहीं बढ़ाया गया।
- बड़े पैमाने पर चलनिधि उपलब्ध करवाने के बावजूद रिज़र्व बैंक के तुलन पत्र में पहले निष्प्रभावीकृत चलनिधि जारी करने के कारण असामान्य रूप से कोई वृद्धि परिलक्षित नहीं हुयी।
- विभिन्न प्रकार के उपाय मौजूद होने तथा उनके लचीले प्रयोग के कारण मौद्रिक और चलनिधि के उपायों को क्रमबद्ध करने में बेहतरीन सहूलियत हुयी।
- वैश्विक संकट से पहले ही अनु-चक्रीय प्रावधानीकरण मानदंड तथा प्रति-चक्रीय विनियमनों का प्रयोग करने से वित्तीय स्थिरता को कायम रखने में मदद मिली।
- राजकोषीय प्रोत्साहन का उपाय सकल मांग में कमी से निपटने के लिए किया गया था न कि विकसित अर्थव्यवस्थाओं की तरह वित्तीय क्षेत्र को अवलंब देने के लिए।

IV. संकट से सबक

इस संकट ने यह दिखा दिया कि इस बात से कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि कोई देश कितना वैश्वीकृत हो चुका है और उसकी घरेलू नीतियां कितनी पुख्ता हैं, वैश्विक अर्थव्यवस्था के अंतर-सूत्रों के कारण वह अलग-अलग नहीं रह सकता। इस संकट ने केंद्रीय बैंकों की ताकत भी आजमा ली है। इस क्रम में केंद्रीय बैंकों ने - अपारंपरिक तथा अभूतपूर्व रूप से अपनी भूमिका को पुनराविष्कृत किया - अंतिम उधारदाता से हटाकर अपनी भूमिका को प्रथम उधारदाता के रूप में केंद्रित किया। हालांकि इस संकट से पक्के सबक निकालना अभी बहुत जल्दी हो सकता है फ़िर भी मैं विशेष रूप से उभरती बाजार अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से इस बहस पर विचार करते हुए मुख्य सबक पर प्रकाश डालना चाहूँगा ।

सबक 1.: मौद्रिक नीति की अपनी सीमाएं हैं : नीतिगत दरों के शून्य की ओर अग्रसर रुख के खतरे

संकट से पहले के दौर का यह प्रबल दृष्टिकोण कि एक उद्देश्य तथा एक उपाय वाला मौद्रिक नीति ढांचा ही सर्वश्रेष्ठ होता है, संकट के दौरान प्रश्नों के कटघरे में आ गया। मूल्य स्थिरता कायम करने में इस ढांचे की सफलता के बावजूद इस संकट ने इस प्रधान दृष्टिकोण को झुठला दिया कि मूल्य स्थिरता के साथ-साथ वित्तीय स्थिरता को भी सुनिश्चित किया जा सकता है। इसे विकसित देशों में मौद्रिक नीति संबंधी की गई पहलों के क्रम में यूँ देखा जा सकता है कि जैसे-जैसे नीतिगत दरें धीरे-धीरे रिकार्ड कमी अथवा यहां तक कि शून्य के करीब पहुँचीं केंद्रीय बैंकों को ऋण तथा चलनिधि उपलब्ध कराने जैसे अपारंपरिक उपाय अख्तियार करने पड़े जिससे नीति के प्रभाव के समक्ष अहम चुनौतियां पैदा हो गयीं।

नए कीन्शवादी मॉडल आम तौर पर यह मानते हैं कि मौद्रिक नीति शून्य की ओर अग्रसर होने के बावजूद प्रभावी हो सकती हैं बशर्ते नीति भावी ब्याज दरों की दिशा में विश्वसनीय प्रतिबद्धताओं का रूप ग्रहण कर सके। तथापि, इसमें जोखिम यह है कि ऐसी प्रतिबद्धताओं की सूचना यदि प्रभावी ढंग से न दी गई हो तो वे केंद्रीय बैंकों की विश्वसनीयता को क्षति पहुँचा सकती हैं। नीतिगत दरों के शून्य की ओर अग्रसर होने की समस्या के समाधान के रूप में (i) केंद्रीय बैंकों द्वारा मुद्रास्फीति लक्ष्यों को बढ़ाने (ब्लैनचर्ड 2010) तथा (ii) ऋणात्मक सांकेतिक ब्याज दरों को संभव बनाने (मैंकिव, 2010) जैसे अन्य निर्धारणों पर कई आधारों से सवाल खड़े किये गये हैं। हालांकि ये उपाय अर्थव्यवस्था में तेजी लाते हैं लेकिन इनसे मुद्रास्फीति में आगे और वृद्धि रोकने की दिशा में केंद्रीय बैंक की इच्छाशक्ति के प्रति जनता के विश्वास पर खतरा पैदा होता है।

शून्य की ओर अग्रसर नीतिगत दरों की समस्या से निपटने के लिए तमाम प्रकार के वैकल्पिक उपाय किये गये थे। उदाहरण के लिए अमेरिकी फेडरल रिज़र्व ने विस्तारवादी मौद्रिक नीति की दिशा में कदम बढ़ाते हुए आरक्षित निधियों को पूरा करके अपने तुलनपत्र के देयता वाले पक्ष में इज़ाफा किया। तथापि, खर्च के प्रति संबद्ध प्रोत्साहन के अभाव में खुद अपने आप में यह कदम विस्तारवादी नीति का पहलू नहीं बनता। निजी प्रतिभूतियों की सीधी खरीद के द्वारा तुलनपत्र के देयता पक्ष में बढ़ोतरी करने को हालांकि काफी प्रभावी समझा जाता है

लेकिन इसके साथ राजकोषीय प्रभाव के रूप में लाभ/हानि सहित दुष्परिणाम भी होते हैं। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (2010) ने उल्लेख किया है कि गहरे संकट के मामले में जोखिम उठाने की प्रवृत्ति में वृद्धि निम्न वास्तविक ब्याज दरों से उपभोग एवं निवेश प्रोत्साहन को लांघ सकती है।

उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में ज्यादातर बहु-संकेतकों (उदाहरणार्थ चीन, भारत तथा रूस में) तथा बहुल-उपायों के आधार पर निर्मित मौद्रिक नीति के ढांचे को संकट की स्थिति में अधिक कारगर पहल माना गया था जिसके चलते नीतिगत दरों के शून्य की ओर अग्रसर होने की समस्या भी नहीं पैदा हुई। उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में चलनिधि प्रबंधन परिचालनों के, मौद्रिक नीति के कार्यान्वयन के एक अभिन्न हिस्सा होने के कारण नीतिगत उपायों को दर तथा चलनिधि उपायों के साथ क्रमबद्ध करना काफी प्रभावी रहा।

हालांकि मौद्रिक नीति लागू करने में ब्याज दर सशक्त उपाय के रूप में जारी है लेकिन सामान्य समय में भी अन्य चलनिधि अथवा समष्टि-विवेकपूर्ण उपायों के रूप में उसमें संपूरक उपायों से न केवल मौद्रिक नीति के अपने कई लक्ष्य हासिल करने का लचीलापन बढ़ जाता है अपितु इससे दरों के शून्य की ओर अग्रसर होने का जोख़िम भी समाप्त हो जाता है। कई उपायों को एक साथ प्रयोग में लाने से मौद्रिक नीति के संचरण को बल मिलता है जो नीतिगत दरों के शून्य की ओर अग्रसर होने के कारण बाधित हो जाती है।

सबक 2. : आस्ति कीमतें तथा मौद्रिक नीति : हवा के खिलाफ़ रुख

संकट से पहले के दौर में केंद्रीय बैंकों की मौद्रिक नीति की विश्वसनीयता 'ग्रेट माडरेशन' हासिल करने के कारण और बढ़ गई। यह माडरेशन ऐसा था जिसमें वृद्धि तो ऊँची थी परंतु मुद्रास्फीति कम। मुद्रास्फीति कम करने को अपना लक्ष्य बनाने के बाद अनेक केंद्रीय बैंकों ने मुख्य रूप से अपना ध्यान मूल्य स्थिरता कायम रखने पर केंद्रित किया। तथापि, यह मानने की जरूरत है कि वैश्वीकरण एक ऐसा कारक था जिससे 'ग्रेट माडरेशन' में सहायता मिली। चीन तथा भारत जैसे देशों ने अपनी अकूत श्रमशक्ति की बदौलत सस्ते स्थानापन्न प्रदान किये और इस प्रकार उन्होंने विकसित अर्थव्यवस्थाओं में मुद्रास्फीति तथा मज़दूरी के दबावों को नियंत्रित करने में मदद की। परिणामस्वरूप, मूल्य-स्थिरता पर स्पष्ट रूप से केंद्रित होकर केंद्रीय बैंक मुद्रास्फीति के दबावों को नियंत्रित कर सके एवं विश्वसनीयता भी हासिल कर सके।

मजबूत वृद्धि के माहौल में ऋण बाजार की अधिकताओं तथा आस्ति-मूल्य में इजाफ़े की 'सादगीपूर्ण अवहेलना' हुई। संकट-पूर्व दृष्टिकोण का झुकाव ज्यादातर इस पक्ष में था कि आस्ति बाजार जोखिम का वितरण और उसका मूल्यन करने में सक्षम हैं। यद्यपि निवेशकों के उत्साह के कारण आस्ति कीमतों में अस्थायी रूप से कुछ उछाल हो सकता है लेकिन इस सबंध में मौद्रिक नीति बमुश्किल से कुछ कर सकती है। (बीन, 2010)। इसके अलावा, कुछ केंद्रीय बैंकों की पर्यवेक्षक भूमिका या तो सीमित होती है या फिर एकदम नहीं होती है। इसलिए वे ऋण तथा आस्ति कीमतों में वृद्धि से उत्पन्न होने वाले प्रणालीगत जोखिम की उपेक्षा करते रहे या उसका आकलन करने में नाकाम रहे।

जोखिम के बाद यह बात काफी मानी जाने लगी कि आस्ति कीमतों में वृद्धि की सादगीपूर्ण अवहेलना की नीति सफल नहीं होगी: मूल्य स्थिरता स्वतः वित्तीय स्थिरता कायम नहीं कर सकती। तदनुसार, यह महसूस किया गया है मौद्रिक नीति के दायरे में समष्टि-वित्तीय स्थिरता आनी चाहिए न कि सिर्फ मूल्य स्थिरता। इस दृष्टिकोण को बल मिल रहा है कि भले ही अल्प-कालिक मुद्रास्फीति की संभावनाएं नियंत्रित हों तो भी मौद्रिक नीति ढांचे में नीति-निर्माताओं को इस बात की छूट मिलनी चाहिए कि वे वित्तीय असंतुलनों के निर्माण के विरुद्ध नीति तय कर सकें। दुनिया-भर के केंद्रीय बैंकों का दृष्टिकोण इसी दिशा में झुकता जा रहा है (कारने, 2009; सिराकावा, 2009; ट्रिचेट, 2009; कैगलियार्नि, 2010; वुडफोर्ड, 2010 तथा फिशर, 2011)।

यह दलील दी जा रही है कि केंद्रीय बैंकों को आस्ति-कीमतों में परिवर्तनों, मौद्रिक एवं क्रेडिट स्थितियों तथा वित्तीय असंतुलनों के निर्माण को ध्यान में रखकर अपनी मौद्रिक नीति के अंतर्निहित विश्लेषक ढांचे में सुधार लाना चाहिए ताकि वे भावी जोखिमों की पहचान कर सकें तथा सुविज्ञ निर्णय ले सकें। समष्टि आर्थिक पर्यवेक्षण तथा मौद्रिक नीति के संचालन के बीच बेहतरीन संभावनाओं की देखते हुए इस धारणा को बल मिला है कि विनियामक तथा पर्यवेक्षी भूमिकाओं की जिम्मेदारियों के साथ-साथ केंद्रीय बैंक मौद्रिक नीति के अपने कार्यों के अतिरिक्त वित्तीय स्थिरता के लक्ष्यों को मजबूत करने में सक्षम हैं। वास्तव में, बैंक ऑफ इंग्लैंड तथा फेडरल रिज़र्व जैसे कई केंद्रीय बैंकों को हाल ही में व्यष्टि विवेकपूर्ण तथा समष्टि-विवेकपूर्ण पर्यवेक्षण की नई जिम्मेदारी दी गई है।

सबक 3 : वित्तीय स्थिरता का लक्ष्य: अस्पष्ट उपकरण

आर्थिक संकट के बाद इस बात पर आम सहमति उभर रही है कि वित्तीय स्थिरता केंद्रीय बैंकों का लक्ष्य होनी चाहिए लेकिन अभी इस पर मतभेद है कि इसे किस सीमा तक मौद्रिक नीति के एक अतिरिक्त लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाए। यह भी दलील दी जा रही है कि वित्तीय स्थिरता के सरोकारों को विचार-केंद्र में रखने के लिए मुद्रास्फीति का लक्ष्य हासिल करने हेतु मौद्रिक नीति परिदृश्य के आकार को बढ़ाया

जा सकता है। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (2010) ने नोट किया कि इस प्रकार का कोई दृष्टिकोण अपनाने के लिए केंद्रीय बैंकों के लिए यह जरूरी है कि वे मुद्रास्फीति में लगातार चल रहे व्यतिक्रमों के प्रति सतर्क रहें अन्यथा वे मौद्रिक नीति की जवाबदेही को क्षति पहुँचाएंगे और मूल्य-स्थिरता की दिशा में दीर्घकालिक प्रतिबद्धता के बारे में अनिश्चितता पैदा करेंगे। प्रश्न है : क्या वित्तीय स्थिरता के लक्ष्य पर केंद्रीय बैंक की प्रतिक्रिया भूमिका में स्पष्टतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए? स्वेन्सन (2009) की दलील है कि इसे अलग से एक नये लक्ष्य की बजाय मौद्रिक नीति के बाधक के रूप में लेना चाहिए। इसके पीछे तर्क यह है कि सामान्य परिस्थितियों में वित्तीय स्थिरता सिवाय इस संकट में जब यह संचरण प्रणाली की प्रभावशीलता को क्षति पहुँचाती है, मौद्रिक नीति पर बाधा नहीं डालती। केंद्रीय बैंकों के लिए व्यापक अधिदेशों को स्पष्ट बनाये जाने की जरूरत है और उन्हें मुख्य अधिदेशों की प्राथमिकता के लिए शर्तों के अधीन रखे जाने की जरूरत है। (गोकर्ण, 2010)।

अनेक उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के लिए वित्तीय स्थिरता उनके मौद्रिक नीति के ढांचे का एक अतिरिक्त लक्ष्य है और इसीलिए उन्होंने घरेलू ऋण वृद्धि तथा भारी मात्रा में पूंजी प्रवाह के मौद्रिक प्रभाव को सामान्य बनाने के लिए आरक्षित नकदी निधि अनुपात जैसे चलनिधि उपायों सहित विभिन्न प्रकार के लिखतों का प्रयोग किया (उदा. चीन, भारत तथा रूस)। अनेक उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में कुछ क्षेत्रों को लक्ष्य बनाकर ऋण-क्षति प्रावधानीकरण संबंधी अपेक्षाओं के रूप में समष्टि विवेकपूर्ण उपायों का प्रयोग किया गया (मोरेनो, 2011)। प्रावधानीकरण संबंधी अपेक्षाओं को बढ़ाने (प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण गैर-बैंक वित्तीय संस्थाओं में बैंकों के एक्सपोजर पर) के अलावा विशेष क्षेत्रों में अनियंत्रित ऋण वृद्धि पर अंकुश लगाने के लिए जोखिम-भारों (आवास ऋण, उपभोक्ता ऋण तथा वाणिज्यिक स्थावर संपदा के लिए) का भी प्रयोग किया गया। अनेक देशों ने उधार को कम करने के लिए ऋणों के लिए उच्चतम सीमाओं (जैसे इंडोनेशिया) तथा विंडो गाइडेंस (चीन में प्राधिकारियों तथा बैंकों के बीच परामर्श) का प्रयोग किया गया वहीं कोरिया ने सकल रूप से ऋण की उच्चतम सीमाओं का प्रयोग ऋण को लघु तथा मझोले उद्यमों पर केंद्रित करने में किया।

हालांकि, इस बहस का पलड़ा इस सहमति की ओर झुक रहा है कि वित्तीय स्थिरता को केंद्रीय बैंक अथवा मौद्रिक नीति के एक उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया जाय, फिर भी इस बात पर सहमति नहीं के बराबर है कि इसके लिए ढांचा क्या हो और उसे कैसे अमल में लाया जाय : पहला, हालांकि केंद्रीय बैंक आस्ति बाजारों के क्रिया-कलापों पर बारीकी से निगरानी रखते हैं फ़िर भी नीति के स्तर पर समयबद्ध रूप से पहल कैसे की जाय, यह अपने आप में बहस के लिए एक खुला मुद्दा है। दूसरा, क्या केंद्रीय बैंकों के पास मूल्य स्थिरता और वित्तीय स्थिरता की दोहरी अपेक्षा को पूरा करने के लिए मौद्रिक तथा विवेकपूर्ण नीति के स्तर पर संचालित करने के लिए पर्याप्त संख्या में उपाय हैं? यदि मौद्रिक तथा विवेकपूर्ण दोनों प्रकार की नीतियां केंद्रीय बैंक संचालित करता है तो मौद्रिक नीति की स्वायत्तता सुनिश्चित करने के लिए केंद्रित रूप से उसके संचालन की व्यवस्थाएं जरूरी होंगी (आइएमएफ, 2010)। तीसरा, समष्टि-विवेकपूर्ण उपायों का अन्य पर्यवेक्षी तथा विनियामक ऐजेंसियों के साथ समन्वय कैसे बिठाया जाए? यह मुद्दा उस समय और अहम हो जाता है जब वित्तीय प्रणाली की विनियामक एंव पर्यवेक्षी भूमिकाएं केंद्रीय बैंकों की परिधि में न आती हों। चौथा, इस बात के भी जोखिम हैं कि कुछ परिस्थितियों में समष्टि-विवेकपूर्ण उपकरण नीतिगत ब्याज दरों के स्थानापन्न के रूप में काम करने लगते हैं और इस प्रकार वे मौद्रिक संचरण प्रणाली की प्रभावशीलता को क्षति पहुँचा सकते हैं।

सबक 4 : वित्तीय स्थिरता : एक साझा जिम्मेदारी ?

इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि मूल्य स्थिरता की तरह वित्तीय स्थिरता की अपनी प्रकृति से ही कोई स्पष्ट पहचान तथा मापन नहीं होता। एक तरफ वित्तीय स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए केंद्रीय बैंकों से एक बड़ी भूमिका निभाने की व्यापक रूप से अपेक्षा की जाती है वहीं दूसरी तरफ़ मूल्य स्थिरता के ठीक विपरीत इसके लिए अन्य विनियामक एजेंसियों के साथ बेहतर तालमेल बनाने के लिए औपचारिक रूप से एक औपचारिक ढांचा विकसित करना अभी शेष है। करुआना (2011) ने इस तथ्य को प्रमुखता से रेखांकित किया कि अन्य विनियामक एजेंसियों के साथ संबंधों को तय करना तथा मूल्य स्थिरता हासिल करने के लिए जरूरी केंद्रीय बैंक की स्वायत्तता सुनिश्चित करना आसान नहीं होगा।

इसके बावजूद इंग्लैंड, अमेरिका तथा यूरोपीय देशों की तरह अनेक देश वित्तीय विनियामक एजेंसियों के बीच बेहतर तालमेल के लिए नई प्रकार की व्यवस्थाएं स्थापित करने की दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहे हैं । विशेष रूप से वित्तीय प्रणाली के उतार-चढ़ाव के संबंध में केंद्रीय बैंकों के पास सूचना-भंडार के दृष्टिकोण से उन्हें वित्तीय स्थिरता की बड़ी भूमिका सौंपी जा रही है। उदाहरण के लिए इंग्लैंड में वित्तीय स्थिरता के लक्ष्य को बढ़ावा देने के लिए बैंक ऑफ इंग्लैंड के गवर्नर की अध्यक्षता में एक वित्तीय नीति समिति का गठन किया गया है। बैंक ऑफ इंग्लैंड के भीतर एक विवेकपूर्ण विनियमन प्राधिकरण (पीआरए) का गठन किया गया है जो समूचे वित्तीय प्रणाली में जोखिम को कम करने के लिए समष्टि विवेकपूर्ण विनियमन से जुड़े मुद्दों का समाधान

करता है। इस संदर्भ में, यह नोट किया जाय कि भारत सहित तमाम उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में मौद्रिक नीति लागू करने तथा वित्तीय प्रणाली का पर्यवेक्षण करने की जिम्मेदारी केंद्रीय बैंकों की है। संकट के समय इस प्रकार की व्यवस्था अधिक असरदार साबित हुई है विशेष रूप से तब जब केंद्रीय बैंकों ने समष्टि-विवेकपूर्ण उपायों को अख्तियार किया।

हाल ही के वर्षों में, रिज़र्व बैंक ने मौद्रिक प्राधिकारी तथा बैंकों तथा गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं का विनियामक होने के नाते समष्टि-विवेकपूर्ण विनियमन का संचालन किया। तथापि, पूंजी बाजार, बीमा तथा पेंशन निधियों के लिए अलग-अलग विनियामक हैं। वित्तीय प्रणाली के विभिन्न विनियामकों के बीच समन्वय को आसान बनाने के लिए हाल में वित्तीय स्थिरता और विकास परिषद (एफएसडीसी) की स्थापना की गई जिसके अध्यक्ष वित्त मंत्री हैं। हालांकि वित्तीय क्षेत्र के भीतर समन्वय प्रणालियों को मजबूत बनाया गया है फिर भी इसकी सक्षमता का मूल्यांकन करना अभी बहुत जल्दबाजी होगी और इसकी परीक्षा भविष्य की घटनाएं ही लेंगी।

सबक 5 : स्थानीय बांड बाजार विकसित करने की आवश्यकता

बाह्य बाजार की स्थिरता के संदर्भ में प्रमुख पहल यह हो सकती है कि स्थानीय मुद्रा बांड बाजार का विकास किया जाय। अनुभवों से पता चलता है कि उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं की तरफ पूंजी का प्रवाह अचानक झटका खा जाता है जब कि वह संकट का स्रोत नहीं है। यह स्थिति उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के नीति-निर्माताओं के सामने अनेक चुनौतियां खड़ी कर सकती है। प्रथम, आर्थिक विकास का वित्तपोषण एक ऐसा मुद्दा बन सकता है जिसकी निर्भरता बाह्य संसाधनों पर महत्त्वपूर्ण होगी। द्वितीय, पूंजी प्रवाह की दिशा उलटने के कारण घरेलू मुद्राओं का झुकाव मंदी की तरफ होगा। तृतीय, बैंकों की अंतर्मध्यस्थता पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है जैसा कि हाल के संकट के दौरान देखा गया। इन परिस्थितियों में जिन देशों में सुव्यवस्थित और चलनिधि के हिसाब से सरल-सहज स्थानीय बांड बाजार मौजूद हैं वे अवरुद्ध हो चुके ऋण बाजारों से उत्पन्न जोखिमों और झटकों से बेहतर ढंग से निपट लेते हैं। चूंकि उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के पास रिज़र्व मुद्रा नहीं होती इसलिए उनके लिए विदेशी मुद्रा भंडार का पर्याप्त बफर रखना जरूरी होगा ताकि वे निवेशकों द्वारा अचानक अपना निवेश बाहर निकालने की स्थिति से उत्पन्न जोखिम से खुद को बचा सकें।

भारत में, रिज़र्व बैंक तथा भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) ने कार्पोरेट बांड बाजार की बाजार माइक्रो संरचना विकसित करने के लिए अनेक कदम उठाए हैं। स्थानीय मुद्रा में विदेशी निवेश की सीमाओं को क्रमशः नरम बनाया गया है। यह उम्मीद की जा रही है कि वित्तीय क्षेत्र के बीमा तथा पेंशन खंडों के सुधार राजकोषीय सुदृढ़ता के साथ मिलकर कार्पोरेट बांडों के प्रति मांग को तीव्र करेंगे। चूंकि भारत के लिए इंफ्रास्ट्रक्चर विकास की बड़ी जरूरत है इसलिए कार्पोरेट बांडों का विस्तार महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

सबक 6 : विनिमय दर नीति तथा वैश्विक असंतुलन

यह तर्क दिया जाता है कि विकास के पूरक मॉडलों के सह-अस्तित्व ने संकट पैदा करने में सहयोग दिया होगा। जहां अनेक उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं ने निर्यात आधारित विकास मॉडलों को अपनाया वहीं प्रमुख विकसित अर्थव्यवस्थाओं ने ऐसे ऋण प्रेरित विकास मॉडलों को अपनाया था जो बाह्य चालू खाता समस्याओं से प्रभावित नहीं होंगे। अंततः इससे चालू खाता घाटा तथा अधिशेष और बचत तथा निवेश के बीच वैश्विक असंतुलन पैदा हुआ। तथापि, कारण बहुत स्पष्ट नहीं हो पाया है : आखिर किस वजह से संकट पैदा हुआ; क्या यह उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में अत्यधिक बचत के कारण पैदा हुआ अथवा विकसित देशों में अत्यधिक उपभोग के कारण। इसके अलावा, यह भी स्पष्ट नहीं है कि क्या केवल विनिमय दरों में परिवर्तन से वैश्विक असंतुलनों को सकल मांग में ब़गैर किसी समायोजन के टाला जा सकता था - विकसित देशों में कमतर उपभोग तथा उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में अधिकतर उपभोग। कुल मिलाकर संतुलित दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि इस बात पर व्यापक सहमति है कि विनिमय दर में अधिक लचीलेपन से वैश्विक अंसतुलन को कम किया जा सकता था।

V. निष्कर्ष

हाल के अनुभवों से पता चला है कि परंपरागत नीतिगत ढांचा हमेशा संकट से निपटने में पर्याप्त नहीं होता। इसलिए, केंद्रीय बैंकों को अपने नीतिगत दृष्टिकोण में पर्याप्त रूप से लचीला और नवोन्मेषी होना चाहिए ताकि वे किसी भी क्षेत्र में असंतुलन पैदा होने पर फौरन जवाबी पहल कर सकें। संकट-पूर्व का यह प्रमुख विचार कि एक लक्ष्य और एक उपाय सर्वश्रेष्ठ मौद्रिक नीति ढांचा है, संकट के दौरान प्रश्नों के कटघरे में आ गया। भारत समेत अन्य उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं का अपना अनुभव यह रहा है कि कई उपायों के साथ-साथ कई संकेतक न केवल सामान्य समय में अपितु संकट के दौरान भी ढंग से काम करते हैं। हालांकि, ब्याज दर का प्रयोग मौद्रिक नीति लागू करने के लिए एक प्रभावी उपाय के रूप में जारी रह सकता है लेकिन इसके साथ पूरक के रूप में अन्य चलनिधि अथवा समष्टि-विवेकपूर्ण उपायों का सामान्य समय में प्रयोग न केवल उनके उद्देश्यों को पूरा करने में मौद्रिक नीति का लचीलापन बढ़ायेगा अपितु

नीतिगत दरों के शून्य की ओर अग्रसर होने का जोखिम भी समाप्त कर सकता है।

संकट के बाद इस बात पर सहमति का उभार दिखाई दिया कि वित्तीय स्थिरता केंद्रीय बैंकों का एक उद्देश्य तो होना चाहिए लेकिन इस बात पर मत-वैभिन्यता की स्थिति बनी रही कि किस सीमा तक इसे मौद्रिक नीति के एक अतिरिक्त लक्ष्य के रूप में माना जाय। हालांकि बहस का पलड़ा इस आम स्वीकृत की तरफ झुका रहा है कि वित्तीय स्थिरता को केंद्रीय बैंक अथवा मौद्रिक नीति का एक उद्देश्य माना जाए लेकिन इस दिशा में एक मुख्य चुनौती कार्यान्वयन के स्तर पर कारगर ढांचा विकसित करना है।

संदर्भ :

बैंक फोर इंटरनेशनल सेटलमेंट्स (2009), 79वीं वार्षिक रिपोर्ट, जून ।

बीन, चार्ल्स, मैथियास पास्टियन, एड्रियन पेनलवार एंड टिम टेलर (2010), 'मॉनिटरी पॉलिसी आफ्टर दि फाल, फेडरल रिज़र्व बैंक ऑफ कैन्सास सिटी वार्षिक सम्मेलन में प्रस्तुत पेपर, जैक्सन होल, व्योमिंग, अगस्त 27 ।

बनकि, बेन एस. (2005), 'दि ग्लोबल सेविंग्स ग्लट एंड यू एस करेंट अकाउंट डेफिसिट', रिमार्क्स एट दि सैंड्रिज लेक्चर वर्जिनिया एसोसिएशन आफ इकोनॉमिक्स, रिचमन्ड, वर्जिनिया।

ब्लांकर्ड, ओलिवर, जिवन्नी डेल अरिसिया एंड पाउलो माउरो (2010), 'रिथिंकिंग मैक्रोइकोनॉमिक्स पॉलिसी', आइ एम एफ स्टाफ पोजिशन नोट नं. 10/03, फरवरी 12 ।

कैग्लियारिनी ए, केंट सी एंड स्टीवेंस जी, (2010), 'फिफ्टी ईयर्स ऑफ मॉनिटरी पॉलिसी : व्हाट हेव वी लर्न्ड?, रिज़र्व बैंक ऑफ ऑस्ट्रेलिया का 50वां एनिवर्सिरी सिंपोजियम, सिडनी, 9 फरवरी।

कार्ने एम. (2009), 'सम कनसिडरेशन्स ऑन यूजिंग मॉनिटरी पॉलिसी टू स्टैबिलाइज इकोनॉमिक एक्टिविटी', रिमार्कस एट दि सिंपोजियम, ऑन 'फाइनानसियल स्टैबिलिटी एंड मैक्रोइकोनॉमिक पॉलिसी' स्पांसर्ड बाइ दि फेडरल रिज़र्व बैंक ऑफ कैन्सास सिटी, जैक्सन होल व्योमिंग, 22 अगस्त।

कैआना, जैमे (2011), ''दि रोल ऑफ सेंट्रल बैंक्स आफ्टर दि क्राइसिस, स्पीच एट दि ऑब्जर्वेटरी ऑफ दि यूरोपियन सेंट्रल बैंक, 19 जनवरी।

फिशर, स्टैनले (2011), 'सेंट्रल बैंक लेसन्स फ्राम दि ग्लोबल क्राइसिस', थर्ड पी.आर. ब्रम्हानंद मेमोरियल लेक्चर एट रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई, 11 फरवरी ।

गोकर्ण, सुबीर (2010), 'मॉनिटरी पॉलिसी कंसिडरेशन्स आफ्टर दि क्राइसिस : प्रैक्टिशनर्स पर्सपेक्टिव', प्लेनरी लेक्चर एट दि कांफ्रेंस 'इकोनॉमिक पॉलिटिक्स फॉर इन्क्लूशिव डेवलपमेंट' आर्गनाइज्ड बाइ दि मिनिस्टरी ऑफ फाइनांस, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एंड नेशनल इस्टिट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनांस एंड पॉलिसी एट न्यू दिल्ली ऑन 1 दिसंबर।

इंटरनेशनल मानिट्री फंड (2010), 'सेंट्रल बैंकिंग लेसन्स फ्रॉम दि क्राइसिस' अवेलबल एट http://www.imf.org.external/np/pp/eng/2010/052710.pdf.

इशि कोतारो, मार्कस्टोन एंड एटिने बी. येहाउ (2009), 'अनकनवेंशनल सेंट्रल बैंक मेजर्स फॉर इमर्जिंग इकोनॉमिक्स', *आईएमएफ वर्किंग पेपर* डब्ल्यू पी/09/226, अक्तूबर ।

क्रुगमैन, पॉल (2009), 'हाउ डिड इकोनॉमिक्स गेट इट सो रांग?', दि न्यूयॉर्क टाइम्स, 2 सितंबर।

मैंकिव, एन ग्रेगरी (2009), 'इट मे बी दि टाइम फॉर दि फेड टू गो निगेटिव,' *दि न्यूयॉर्क टाइम्स,* 18 अप्रैल।

मिंश्की, हाइमन पी (2008), '*स्टैबिलाइजिंग एन अनस्टेबल इकोनॉमी,* 'मैकग्रा-हिल पब्लिकेशन।

मोहांती, दीपक (2009), 'ग्लोबल फाइनांसियल क्राइसिस एंड मॉनिटरी पॉलिसी रिस्पांस इन इंडिया', *रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया बुलेटिन,* दिसंबर।

_____ (2010), 'दि ग्लोबल फाइंनासियल क्राइसिस : जेनेसिस, इंपैक्ट एंड लेसन्स,' *रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया बुलेटिन,* फरवरी।

मोरेनो, आर. (2011), 'पॉलिसी मेकिंग फ्रॉम ए मैक्रोप्रुडेंशियल पर्सपेक्टिव इन इमर्जिंग मार्केट इकोनॉमीज़', *बी आइ एस वर्किंग पेपर्स* सं.336।

रेड्डी, वाई. वी. (2009), *'एपिलॉग' इन इंडिया एंड दि ग्लोबल फाइनांसियल क्राइसिस : मैनेजिंग मनी एंड फाइनांस,* ओरियंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली।

रिइनहार्ट, कारमेन एम. एंड केनेथ एस. रोगॉफ, (2009), दिस टाइम इज डिफरेंट : एट सेंचुरीज ऑफ फाइनांशियल फॉली, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।

शिराकावा, एम. (2009), 'सम थॉट्स ऑन इंसेंटिव्स एट माइक्रो एंड मैक्रो-लेवल फॉर क्राइसिस प्रीवेंशन,' रिमार्क्स एट दि एट्थ बी आई एस एनुअल कांफ्रेंस ऑन 'फाइनांशियल एंड मैक्रोइकोनॉमिक रेशिलेंस - रीविजिटेड', बासल, 26 जून।

सुब्बाराव, डी (2009), 'इपैक्ट ऑफ दि ग्लोबल फाइनांशियल क्राइसिस ऑन इंडिया : कोलैटरल डैमेज एंड रिसपांश', स्पीच डिलीवर्ड एट दि सिपोंजियम ऑन 'दि ग्लोबल इकोनॉमिक क्राइसिस एंड चैलेंजेज फॉर दि एशियन इकोनॉमी इन ए चेंजिंग वर्ल्ड' आर्गनाइज्ड बाइ दि इंस्टिट्यूट फॉर इंटरनेशनल मॉनिटरी अफेयर्स, टोक्यो, 18 फरवरी।

स्वेंसन्स, लार्स ईओ (2009), 'फ्लेक्सिबल इंफ्लेशन टारगेटिंग - लेसन्स फ्रॉम दि फाइनांशियल क्राइसिस', स्पीच एट दि वर्कशॉप 'टुवर्ड्स ए न्यू फ्रेमवर्क फॉर मॉनिटरी पॉलिसी? लेसन्स फ्रॉम दि क्राइसिस' आर्गनाइज्ड बाइ दि नीदरलैंड्स बैंक, अम्सटर्डम, 21 सितंबर।

ट्रिचेट, जे.सी (2009), 'क्रेडिबल अलर्टनेस रिविजिटेड,' स्पीच डिलिवर्ड एट दि सिंपोजियम ऑन 'फाइनांशियल स्टैबिलिटी एंड मैक्रोइकोनॉमिक पॉलिसी', फेडरल रिज़र्व बैंक ऑफ कैनसास सिटी, जैक्शन होल, व्योमिंग, 22 अगस्त।

वुडफोर्ड, एम (2010), 'फाइनांशियल इंटरमिडिएशन एंड मैक्रोइकोनॉमिक एनालिसिस,' *जर्नल ऑफ इकोनॉमिक पर्सपेक्टिव्स,* वाल्युम. 24, फाल।